International Journal of Sanskrit Research 2022; 8(6): 206-208

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2022; 8(6): 206-208
© 2022 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 12-08-2022
Accepted: 21-10-2022

डॉ. काजल ओझा
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग,
बी0एस0एन0वी0 पी0जी0 कॉलेज,
लखनऊ, उत्तर प्रदेश भारत

Corresponding Author:
डॉ. काजल ओझा
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग,
बी0एस0एन0वी0 पी0जी0 कॉलेज,
लखनऊ, उत्तर प्रदेश भारत

श्रीमद्भगवद्गीता में कर्मयोग

डॉ. काजल ओझा

प्रस्तावना

आज प्रत्येक व्यक्ति सुख–शान्ति हेतु इधर–उधर भटक रहा है, ऐसा कोई ही व्यक्ति होगा जो कि यह स्वीकार करे कि ''मैं वास्तव में सुखी हूँ।'' समस्त कठिनाइयों एवं दुःखों का एक ही उद्गम है–मानवीय दुर्बुद्धि। जिस उपाय से दुर्बुद्धि को हटाकर सद्बुद्धि मे स्थापित की जा सके, वही मानव कल्याण का और विश्वशान्ति का समाधान कारक मार्ग होगा और वह मार्ग है 'योग'।

योग एक आध्यात्मिक प्रक्रिया को कहते हैं जिसमें शरीर, मन एवं आत्मा को एक साथ लाने (योग) का काम होता है। यह शब्द प्रक्रिया (Process) एवं धारणा (Concept) में ध्यान प्रक्रिया से सम्बन्धित है। श्रीमद्भगवद्गीता को 'योग' का प्रतिष्ठित ग्रन्थ माना जाता है, जिसमें योग शब्द के कई अर्थ बताये गये हैं– बुद्धियोग, सन्यासयोग, कर्मयोग, ज्ञानयोग एवं समत्वयोग। अतः मैं इस प्रस्तुत शोधपत्र में श्रीमद्भगवद गीता के अनुसार कर्मयोग को वर्णित करने जा रही हूँ।

कर्म शब्द 'कृ' धातु से निर्मित है जिसका अर्थ है करना, व्यापार, हलचल आदि। गीता के तृतीय अध्याय में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कर्म करने एवं उसके महत्व का उपदेश दिया इसलिए इस अध्याय का नाम कर्मयोग है। संसार के प्रत्येक धर्म में ईश्वर प्राप्त है। कोई न कोई कर्म करने को कहा गया है। प्राचीन वैदिक धर्म के अनुसार यज्ञ–त्याग ही वह कर्म है जिससे ईश्वर की प्राप्ति होती है। यज्ञ–यज्ञादि के वैदिक कर्मों के अतिरिक्त चातुवर्ण्य अन्य आवश्यक कर्म मनुस्मृति आदि धर्मग्रन्थों में वर्णित है। गीता के द्वारा प्रतिपादित 'कर्म' शब्द का अर्थ केवल 'श्रौत' या 'स्मार्त कर्म' रूपी संकुचित अर्थ नहीं, अपितु व्यापक अर्थ है। चाहे वे कर्म कायिक हो अथवा वाचिक हो या मानसिक हो।[1] जीवन एवं मृत्यु भी कर्म ही है।

आजकल योग शब्द का रूढ़ार्थ चित्तवृत्तियों का निरोध करना अथवा ध्यान, समाधि का योग है। उपनिषदों में भी इसी अर्थ में योग शब्द का प्रयोग हुआ है–

तम् योगमिति स्थिरामिन्द्रियधारणाम्।
अप्रेमत्तस्तदाभवति योगोहि प्रभवाप्ययौ।।[2]

परन्तु गीता में यह संकुचित अर्थ विवक्षित नहीं है। योग शब्द 'युज्' धातु से बना है जिसका अर्थ है– जोड़, मेल, मिलाप, एकता आदि एवं ऐसी स्थिति की प्राप्ति के उपाय, साधन या कर्म को 'योग' कहते हैं।

श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं–

योगस्थः कुरु कर्मणि संगं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।।[3]

अर्थात् योगस्थ होकर कर्म करो, संग का त्याग करके, सिद्धि–असिद्धि में सम होकर, समता ही योग के अभिप्रेत हैं। योगस्थ होकर किया जाने वाला कर्म न केवल उच्चतम अपितु अत्यन्त ज्ञानपूर्ण सांसारिक विषयों के लिए भी शक्तिशाली एवं अमोघ होता है, क्योंकि उसमें समस्त कर्मों के स्वामी ईश्वर का ज्ञान व संकल्प भरा होता है। योग है कर्म की कुशलता –

'योगस्थः कुरु कर्माणि, समत्वं योग उच्यते, योगः कर्मसु कौशलम्।[4]

परन्तु जीवन के लिए किया जाने वाला कर्म, योगी को उसके महान् ध्येय दूर ले जाता है एवं यह बात सर्वसम्मत है कि योगी का ध्येय इस दुःख–शोकमय मानव जन्म से मुक्त होना होता है। जो योगी कर्मफल की इच्छा के बिना भगवान् के साथ योग में स्थित होकर कर्म करते हैं, वे जन्म बन्धन से मुक्त होते हैं एवं उस परम पद को प्राप्त करते हैं, जहाँ मानव के मन एवं प्राण को सताने वाली किसी भी व्याधि का नामोनिशान तक नहीं होता। योगी जिस पद को प्राप्त करता है, वह ब्रह्मी स्थिति होती है और वह ब्रह्म में दृढ़ प्रतिष्ठ हो जाता है, इसमें कोई चाँचल्य की स्थिति नहीं होती।

गीता में दी हुई व्याख्या 'समत्वं योग उच्यते' से पूर्णतः स्पष्ट है कि यहाँ पर योग शब्द प्रवृत्ति मार्ग अर्थात् कर्मयोग के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। गीता के अनुसार कर्म करने पर भी उनके पाप–पुण्य से बचने की केवल यही युक्ति है, कि 'कर्म' साम्य बुद्धि से किये जाएँ। यदि हम कर्म को छोड़ देने का विचार करें, तब भी जब तक यह शरीर है, तब तक सोना, बैठना इत्यादि कर्म रूक नहीं सकते–

न हि देहभृता शक्यं व्यक्तुं कर्माण्यशेषतः।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते।।[5]

अतएव कोई भी मनुष्य कर्मशून्य नहीं हो सकता। कर्मरूपी बिच्छू कभी नहीं मरता। अतः कोई ऐसा मार्ग सोचना चाहिए जिससे वह विषरहित हो सके। गीता का सिद्धान्त है– कर्मों से अपनी आसक्ति को हटा लेना चाहिए, यही एक मात्र उपाय है। परन्तु समस्त कर्मों को छोड़ देना नैष्कर्म्य नहीं है, तथापि संन्यास मार्ग वाले तो कर्मों का त्याग करके ही मोक्ष प्राप्त करते हैं। अतः मोक्ष प्राप्ति के लिए कर्मों का त्याग आवश्यक है। गीता में इस शंका के समाधान में कहा गया है कि सन्यास मार्ग वालों को मोक्ष तो मिलता है, किन्तु कर्मों का त्याग करने से नहीं अपितु उनके मोक्ष प्राप्ति उनके ज्ञान का फल है। यदि कर्मों का त्याग करने से मोक्ष प्राप्ति होती है तो पत्थर को भी मुक्ति मिल जाती है। अतः गीता के अनुसार नैष्कर्म्य सिद्धि की प्राप्ति के लिए कर्म छोड़े नहीं, अपितु ज्ञान द्वारा आसक्ति को छोड़कर उन्हें करना आवश्यक होता है। इसे ही कर्मयोग कहते हैं। उपर्युक्त बातें अत्यन्त महत्वपूर्ण व उपयोगी है। यदि संसार में उत्पन्न समस्त मानव इन भावों से युक्त हो जाय तो सम्पूर्ण संसार का कल्याण होगा। यह संसार यज्ञमय है। इस सृष्टि के समस्त मनुष्यों एवं उनके कर्मों को यज्ञ के लिए ही ब्रह्मदेव ने उत्पन्न किया। चातुवर्ण्य आदि समस्त शास्त्रोक्त कर्म एक प्रकार के यज्ञ हैं। प्रत्येक मनुष्य अपने–अपने अधिकार के अनुसार इन यज्ञों को या शास्त्रोक्त कर्मों का कर्तव्य व्यवहार को न करे तो सम्पूर्ण समाज की हानि होगी एवं सम्भव है कि अन्त में उनका नाश भी हो जाये। इसलिए ऐसे व्यापक अर्थ से सिद्ध होता है कि लोक संग्रह के लिए यज्ञ की सदैव आवश्यकता होती है। कर्म चाहे किसी भी प्रकार का हो, परन्तु कर्म करने की इच्छा और अपने उद्योग को बिना छोड़े तथा फल प्राप्ति की आशा न रखकर उसे करते रहना चाहिए। साथ ही हमें भविष्य में परिणामस्वरूप मिलने वाले सुख–दुःख को भी एक समान भोगने के लिए तैयार रहना चाहिए–

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थीन्विमूढ़ात्मा मिथ्याचारः स उच्यते।
यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्त स विशिष्यते।।[6]

अर्थात् जो मनुष्य केवल इन्द्रियों की वृत्तियों को रोक देता है एवं मन से विषयों का चिन्तन करता रहता है, वह पूरी तरह मिथ्याचारी एवं जो मनुष्य मनोनिग्रहपूर्वक काम्य–बुद्धि को जीत कर समस्त मनोवृत्तियों को लोकसंग्रह के लिए अपना–अपना काम करने देता है, वही श्रेष्ठ है। बाह्य जगत् या इन्द्रियों के व्यापार हमारे उत्पन्न किये हुए नहीं है वे स्वभावसिद्ध हैं। हम देखते हैं कि जब कोई सन्यासी बहुत भूखा होता है, तब वह चाहे कितना भी निग्रही हो, भीख मांगने के लिए विवश हो जाता है। तात्पर्य यह है कि निग्रह चाहे जितना हो, परन्तु इन्द्रियों के जो स्वाभावसिद्ध व्यापार है, वे कभी भी नहीं धुलते। गीता के द्वितीय अध्याय में श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा है–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽत्वकर्मणि।।[7]

अर्थात् तुम कर्मभूमि में उत्पन्न हुए हो, इसलिए कर्म करना तुम्हारा अधिकार है, फल के विषय में कुछ भी नहीं है। यह सृष्टि ईश्वर पर अवलम्बित है, अतः तुम कर्मफल की लालच से किसी कार्य को न करो। कर्म न करने का तुम हठ मत करो, अपितु तुम्हारा जो अधिकार है उसके अुनसार फल की आशा छोड़कर कर्म करते रहो।

गीता में कहा गया है कि अनासक्त होना अत्यावश्यक है क्योंकि इससे काम, क्रोध, मोह, लोभ से छुटकारा मिलता है। इसके बिना सच्चा सुख नहीं प्राप्त हो सकता। यह सुख एवं समत्व मनुष्य को ईश्वर में रहते हुए पूर्ण रूप से प्राप्त करने होंगे, जो अन्तः सुख है, अन्तराराम है एवं अन्तर्ज्योति है, वही योगी ब्रह्मभूत होकर ब्रह्मनिर्वाण को प्राप्त होता है। वह ब्रह्म हो जाता है, उसकी चेतना, शाश्वत पुरुष की उस अक्षर दिव्यता के साथ एक हो जाती है, जो उसकी प्रकृति में व्याप्त है।

कर्मयोग की श्रेष्ठता के सम्बन्ध में गीता में कहा गया है कि जिस संसार में हम रहते हैं, उसमें क्षणभर जीवित रहना भी जब कर्म है, तब कर्म को छोड़कर कहाँ जायें? इस संसार (कर्मभूमि) में रहना है तो कर्म किस प्रकार छूटेंगे? हम यह प्रत्यक्ष रूप से देखते हैं कि जब तक यह शरीर है, तब तक भूख–प्यास जैसे विकार नहीं छूटेंगे? हम यह प्रत्यक्ष रूप से देखते हैं कि जब तक यह शरीर है, तब तक भूख–प्यास जैसे विकार नहीं छूटते हैं एवं उनके निवारणार्थ भिक्षायाचन जैसा कर्म करने के लिए यदि संयास मार्ग के अनुसार स्वतंत्रता है तो अनासक्त बुद्धि से अन्य व्यावहारिक शास्त्रोक्त कर्म करने में क्या समस्या है? चित्त की विरक्त का इन्द्रियों द्वारा शास्त्रसिद्ध कर्म करने में क्या हानि है? सृष्टि की घटनाओं को भी क्षण–भर के लिए भी विश्राम नहीं मिलता। सूर्य एवं चन्द्र आदि देवता भी निरन्तर कर्म में प्रवृत्त रहते हैं, तो फिर मनुष्यों की क्या बिसात? कर्म ही सृष्टि है एवं सृष्टि ही कर्म है। कर्म का त्याग करने से भोजन की प्राप्ति भी सम्भव नहीं है। भगवान् स्वयं प्रत्येक युग में अवतार लेकर इस मायायुक्त जगत् के सज्जनों की रक्षा एवं दुष्टों के विनाश रूपी कर्म करते हैं। उन्होंने गीता में कहा है कि यदि मैं कर्म न करूँ तो यह संसार नष्ट हो जायेगा।[8] इसेस सिद्ध होता है कि जब भगवान् जगत् के धारणार्थ कर्म करते हैं तब इस कथन से क्या प्रयोजन है कि ज्ञानोत्तर कर्म निरर्थक हैं? अतः अर्जुन को निमित्त बनाकर भगवान् सबको उपदेश करते हैं कि इस जगत् में कर्म किसी से छूट नहीं सकता; इसलिए कर्मों की बाधा से बचने के लिए मनुष्य अपने धर्मानुसार कर्त्तव्य को फल की आशा का त्याग करके निष्काम बुद्धि से सदैव करता रहे। यही एक मार्ग (योग) मनुष्य के अधिकार में हैं एवं उत्तम भी है। प्रकृति तो सदैव अपना व्यवहार करती रहेगी, परन्तु उसमें से कर्तव्य के अभिमान की बुद्धि को छोड़ देने से मनुष्य युक्त ही है।[9]

चातुवर्ण्य व्यवस्था के अुनसार ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि अपना व्यवसाय करते रहें इसी में उनका एवं समाज का कल्याण है। इस व्यवस्था में गड़बड़ करना उचित नहीं है। प्रत्येक मनुष्य शास्त्रहित कर्तव्य करें यही श्रेष्ठ है। पराये धर्म का आचरण सुख से करते बने, तो भी उसकी अपेक्षा अपना धर्म ही श्रेयस्कर है–

''श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः पर धर्मात्स्वानुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।।''[10]

अर्थात् समाज के उचित संचालन के लिए प्रत्येक मनुष्य के कर्म निश्चित कर दिये गये। उसे उन्हीं कर्तव्यों का निर्वाह करना चाहिए।

कर्मयोगी को कामनाओं को नष्ट कर देना चाहिए। कर्मयोगी के समत्व की भावना अनिवार्य रूप से होनी चाहिए। इनके लिए इन्द्रियों का दमन एंव मन का शमन आवश्यक है। कर्म लोकसंग्रहार्थ अर्थात् लोक के कल्याण के लिए होना चाहिए। कर्मयोग की विधि से कर्म करने पर वह बन्धनकारी नहीं रहता एवं उस कर्म का निष्कर्म में पर्यवसान हो जाता है। श्रीकृष्ण कर्ममार्ग का ऐसा सुन्दर एवं प्रत्यक्ष उपाय बताते हैं कि कर्म किये जाने पर भी कर्मबन्धन रक्षा हो जाये। कर्मयोग की यह विधि जैसी कहने में सुगम है, वैसी ही व्यवहार में कठिन है। यह तपोमय मार्ग है।

श्रीकृष्ण ने अर्जुन को अनेक प्रकार से निष्काम कर्म करने का उपदेश दिया है। जैसे– कोई भी पुरुष कर्म किये बिना नहीं रह सकता। प्रकृति प्रत्येक मनुष्य को अपने गुणों द्वारा कर्म में प्रवृत्त करती है। कर्मों को प्रारम्भ न करने पर पुरुष को नैष्कर्म्य प्राप्ति नहीं होती एवं कर्म का ध्यान करने से सिद्धि नहीं मिलती।

इस प्रकार श्रीकृष्ण ने अर्जुन को निमित्त करके मानवमात्र को उपदेश दिया है कि प्रत्येक मनुष्य को शास्त्रविहित नियत कर्म करना चाहिए। यदि वर्तमान समय में प्रत्येक मनुष्य इस प्रकार का आचरण करें तो समाज में व्याप्त समस्त बुराईयाँ स्वतः ही नष्ट हो जायेंगी।

सन्दर्भ

1. श्रीमद्भगवद्गीता–5/8, 9
2. कठोपनिषद्– 6/11
3. गीता – 2/48
4. गीता – 2/50
5. गीता – 18/11
6. गीता – 3/6 , 7
7. गीता – 2/47
8. गीता – 4/8, 3/24
9. गीता – 3/27, 13/2, 14/19, 18/16
10. गीता – 3/45